अध्याय पंद्रह

1991 का सुनहरा ग्रीष्म

सभी सुधारक कुंआरे हुए हैं।

-जॉर्ज मूर

इतिहास विडंबनाओं से भरा पड़ा है। नरसिंह राव द्वारा 1991 में की गई आर्थिक क्रांति जवाहर लाल नेहरू द्वारा 1947 में की गई राजनीतिक क्रांति की अपेक्षा अधिक महत्व रखती है। चीन में डेंग जाओपींग की सत्तर के दशक की आर्थिक क्रांति व माओ की 1949 की क्रांति की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। उस समय, हालांकि राव ने ऐसा व्यवहार किया जैसे कि उन्हें अपनी क्रांति में विश्वास नहीं था और जनता ने प्रतिक्रियास्वरूप उनकी पार्टी को दूध में से मक्खी की तरह निकाल फेंका।

1996 के आम चुनावों में कांग्रेस की हार की कोई व्याख्या किस प्रकार कर सकता है। नब्बे के दशक के कुछ वर्ष भारतीय अर्थव्यवस्था के जीवनकाल थे। सुनहरा समय था तथा जिसमें अलग से समष्टिगत अर्थशास्त्र के उत्कृष्ट परिणाम देखने को मिले। सुधारों ने विश्वास की उत्सुकता की समझ हम में जगाई। बहुत से लोगों ने इसी तरह की समझ व संभावनाएं पचास के दशक में भी महसूस की थीं। अर्थशास्त्रियों ने भारत को कवर स्टोरी में 'आजाद बाघ' कहा। राव न तो अपना कद ही लोगों के समक्ष बढ़ा सके और न ही कोई ऐतिहासिक उपलब्धि ही हासिल कर सके। कांग्रेस पार्टी ने भी उनकी महान और अभूतपूर्व उपलब्धियों को चुनावी मुद्दा नहीं बनाया। यह सही है कि एक औसत मतदाता इन सुधारों की व्याख्या को

समझने में सक्षम नहीं है, किंतु वे सुधरे आर्थिक हालातों से भी बेखबर नहीं थे। कांग्रेस की हार के लिए एक कारण यह भी दिया जा सकता है कि लोगों ने राव को इतिहास का द्वारपाल ही माना क्योंकि वे उस समय वहां थे, जब इतिहास बदला था। लोगों ने सुधारों के लिए उन्हें कोई श्रेय नहीं दिया। इन विडंबनाओं को समझने के लिए यह जरूरी है कि हम देखें कि 1991 के सुनहरे ग्रीष्म में एक के बाद एक सुधार कैसे होते गए।

मानव-बम ने मई 1991 में राजीव गांधी की जीवन लीला समाप्त कर दी। वे अपने चुनावी प्रचार के दौरे पर थे और उनकी मौत से हर जगह सहानुभूति की एक लहर फैल गई जिसने कांग्रेस को जीत के करीब पहुंचाया। पार्टी ने नरसिंह राव को प्रधानमंत्री पद के लिए चुना। उन्हें इसलिए चुना गया क्योंकि वह सत्तर वर्षीय शांत, निष्प्रभ और किसी के लिए खतरा नहीं थे। वह अपने लंबे राजनीतिक कॅरियर में मुख्य राजनीतिक सर्कल में रह चुके थे। हालांकि इससे पहले उन्होंने कभी भी कोई आर्थिक विभाग नहीं संभाला था। वह एक बुद्धिजीवी व एशियाई और यूरोपीय भाषाओं के जानकार भी थे। जब वह संसद से रिटायर होने की तैयारी में थे, तब पार्टी ने अंतराल को रोकने वाले नेता के रूप में उन्हें लोगों के सामने अल्पमत सरकार का नेतृत्व प्रदान किया, जिसके बारे में कोई नहीं जानता था कि वह कब गिर जाएगी। फिर भी उन्होंने 1947 के बाद एक बड़ी क्रांति लाकर हर किसी को चौंका दिया।

वित्तीय संकट लंबे समय से चला आ रहा था। इसका मुख्य कारण राजीव गांधी सरकार द्वारा 1985 के बाद की फिजूलखर्ची था। जब खाड़ी संकट सामने आया तो तेल के दाम आसमान छूने लगे और भारत ने पाया कि उसके पास तेल खरीदने के लिए पर्याप्त धन नहीं है। देश की विदेशी मुद्रा बुरी तरह कम होने लगी और

प्रवासी भारतीय भी यहां से वापस जाने लगे। जब राव ने अपनी भूमिका संभाली तब उन्होंने अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष के साथ जमानती पैकेज के संबंध में बात की। लेकिन राव के पूर्ववर्ती चंद्रशेखर और वी.पी. सिंह इस संकट का सामना साहस से नहीं कर सके थे। राव समझ गए थे कि भारत दिवालिया हो गया है और उनका पहला और सबसे महत्वपूर्ण कदम एक समझदार व सयाना वित्त मंत्री भारत को देना है। उन्हें प्रसिद्ध आई.जी. पटेल का ख्याल आया, जो हाल ही में लंदन के अर्थशास्त्र के स्कूल से वापस भारत लौटे थे। लेकिन वह कई कांग्रेसी दिग्गजों में मोरारजी के खेमे के माने जाते थे। राव साथ ही किसी युवा को चाहते थे। अंततः शांत, मृदुभाषी अर्थशास्त्री मनमोहन सिंह को ही बेहतर मान, उन्हें चुना। उनका करियर रिजर्व बैंक के गर्वनर के रूप में भी काफी प्रसिद्ध रहा था। हाल ही में जब वह दक्षिण आयोग जेनेवा में अध्यक्ष पद पर थे तब भी उन्होंने गंभीर प्रयासों से पूर्व एशियाई चमत्कारों को समझने की कोशिश की थी। यहीं से उन्हें महसूस हुआ कि भारत को पुरानी और मूर्खतापूर्ण योजनाओं को रद्द करना होगा।

21 जून 1991 को राष्ट्रपति ने नई कैबिनेट को शपथ दिलाई। अगले ही दिन राव ने घोषणा की कि राष्ट्र के सामने बहुत बड़ा संकट आ खड़ा हुआ है और उनकी सरकार इरादा कर चुकी है कि "बीते हुए समय के इस मकड़जाल को साफ कर और एक नए समय में प्रवेश करेंगे।" मनमोहन सिंह ने वित्त मंत्री बनते ही सबसे पहला कदम यह उठाया कि रिजर्व बैंक के गवर्नर एस. वेंकटरमण और उनके योग्य सहयोगी सी. रंगराजन को दिल्ली बुलाया। उस दिन इन तीनों ने प्रधानमंत्री को सूचित किया कि देश दिवालिया होने के कगार पर है। वे जानते थे कि अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष से ऋण ही उम्मीद की एकमात्र किरण है। वास्तव में अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के साथ पूर्व सरकार की बातचीत काफी आगे तक हो चुकी थी। नरसिंह राव

के कहीं गहरे में एक बात यह भी थी कि यह संकट ही वह मौका है जिससे कई बड़े बदलाव लाए जा सकते हैं।

राव ने विपक्ष के प्रमुख नेताओं के साथ एक गुप्त बैठक की जिसमें मनमोहन सिंह ने सभी को स्थिति की गंभीरता से अवगत कराया। मनमोहन सिंह ने कहा कि अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष से ऋण ही अब हम लोगों की साख बचा सकता है। जैसे भी हो हमें अपने सदन को क्रम में लाना होगा। उन्होंने कुछ बुनियादी सुधारों की जरूरत के बारे में भी बताया। संक्षिप्त में बताया कि वह मूल्य घटाने जा रहे हैं, वे सरकार द्वारा उठाए गए मुश्किल कदम जिनका वह इरादा कर चुके हैं, उसमें उनके सहयोग की उम्मीद करते हैं। इसके बाद वित्त मंत्री ने अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष के प्रबंध संचालक एम. कैमदेसस से वादा किया कि हम व्यापार और उद्योग नीति में कई बड़े सुधार लाएंगे।

सरकार ने जुलाई के पहले तीन दिनों में भारतीय रुपये का बीस प्रतिशत अवमूल्यन किया। दूसरे अवमूल्यन के बाद, वह पी. चिदंबरम, नए वाणिय मंत्री और मोंटेक सिंह आहलुवालिया, वाणिज्यिक सचिव से मिले और कहा कि वे निर्यात पर से सब्सिडी पूर्ण रूप से खत्म करना चाहते हैं। उन्होंने बहस की कि निर्यातकों को सस्ते रुपये के द्वारा समान प्रोत्साहन दिए जाने के कारण अवमूल्यन ने सी.सी.एस. को अनावश्यक बना दिया है। इससे राजकोषीय घाटे में 0.4 प्रतिशत की कमी आएगी।

इस बात पर चिदंबरम की पहली प्रतिक्रिया यह थी कि यह कदम किसी वाणिज्य मंत्री के लिए अपने राजनीतिक करियर बनाने के पहले ही दिन आत्महत्या की तरह होगा। उसने तर्क दिया कि निर्यात को बढ़ावा देने के लिए सी.सी.ए.एस. ही तो उसका प्रमुख हथियार है। वह निर्यातकों का सामना किस मुंह से करेंगे? उन्होंने

कहा कि "मुझे इस बारे में सोचने का मौका दो।" मनमोहन सिंह ने कहा कि आप इस पर जल्दी ही विचार कर जवाब दीजिए क्योंकि प्रधानमंत्री कल सुबह ही इसकी घोषणा करना चाहते हैं। चिदंबरम नाराज हो गए, किंतु बाद में वह अपने आप ही राजी भी हो गए। उन्होंने पूछा कि वह इसी समय व्यापक व्यापार सुधारों की घोषणा भी कर सकता है। वित्तमंत्री ने कहा, "आज रात ही?" चिदंबरम ने अपनी सहमति जताई। वे शाम को मिलने व व्यापार प्रस्तावों पर समीक्षा करने के लिए राजी हो गए।

यद्यपि यह आर्थिक मंत्रालय में उनका पहला काम था, जिसे करके वाणिज्य मंत्री ने सिद्ध कर दिया कि वह बहुत ही तेज सीखने वाले हैं। उन्होंने अपने काम के पहले हफ्ते के दौरान बड़े मुद्दों को समझने में रात और दिन एक कर दिए। उन्होंने बड़ी उत्सुकता से रिपोर्टों को पढ़ा और यह महसूस किया कि देश को व्यापार संबंधी सुधारों की जरूरत है। हार्वर्ड विश्वविद्यालय से एम.बी.ए. चिदंबरम व्यापार को समझने लगे थे और यह सहज वृत्ति से उसे खोल रहे थे। उद्योगों के वकील होने के नाते, वह पुरानी नीतियों से हुए नुक्सान को देख रहे थे। मंत्री बनने से पहले उन्होंने मजाक में डी.आर. मेहता से कहा था, जोकि आयात और निर्यात के मुख्य नियंत्रक थे (सी.सी.आई.ई.), वह उनके काम के पहले हिस्से को तो जान गए हैं, लेकिन दूसरे को नहीं। यदि देश विकास चाहता है तो उसे नियंत्रक की जरूरत क्यों है? वह सी.सी.आई.ई. से बोले कि यदि ये उनके हाथ में होता तो वह लाल किताब की प्रत्येक प्रति को जला देते जोकि वाणिय मंत्रालय की बाइबिल समान है जिसमें हजारों उत्पादों की संक्षिप्त में व्याख्या की गई है। उद्यमियों से भयभीत, सी.सी.आई.ई. विभाग के नियंत्रक के 1,000 कर्मियों के लिए यह 'गाइड' थी। सच्चा नियंत्रक इससे मन नहीं बहलाता या प्रभावित नहीं होता।

उद्योग भवन के अपने कार्यालय में वापस आने पर चिदंबरम ने मोंटेक और डी.आर. मेहता को बुलाया। उन्होंने पूछा कि क्या वे लाइसेंस राज की व्यापार शाखा को विखंडित करने की स्थिति में हैं। यद्यपि इसे बनाने में चालीस साल लगे थे, उनके पास इसे ढहाने में सिर्फ आठ घंटे थे। वह उनके चेहरों से बता सकते थे कि मोंटेक तैयार थे, किंतु मेहता नहीं। वह मोंटेक से बोले, "चलो मेरे चेंबर में चलकर काम करते हैं। मैं वकील हूं और मुझे ब्रीफ लिखाने की आदत है, और इससे ये बहुत जल्दी होगा।" वे जानते थे कि उनका प्राथमिक कार्य आयात लाइसेंस को समाप्त करना है। अगर वे लाइसेंस को विक्रय प्रोत्साहन के द्वारा प्रतिस्थापित कर सकते तो वहां पर उनकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। विदेशी मुद्रा के अभाव के कारण निर्यातकों को कच्चा माल खरीदने के लिए लाइसेंस दिए जाते थे जोकि आयात के लिए उत्पाद बनाने में चला जाता था। मोंटेक सिंह इस प्रकार के एक प्रोत्साहन के विषय में जानते थे। यह मंत्रालय के कई वर्षों से चक्कर काट रहा था। यह आयात-निर्यात पावती पत्र कहलाता था। यह निर्यातकों को उनके निर्यात के मूल्य के भाग के लिए विदेशी मुद्रा अर्जित करने की अनुमति देगी। वे इन्हें बाजार में बेच सकते थे या सीधे वस्तुओं का आयात कर सकते थे। गैर-निर्यातक या घरेलू उद्योग जिन्हें कच्चा माल आयात करने की आवश्यकता थी, वे आयात लाइसेंस के लिए आवेदन करने की बजाए बाजार से आयात-निर्यात पावति पत्र खरीद सकते थे।

चिदंबरम इस हथियार को इसलिए पसंद करते थे क्योंकि यह इस प्रक्रिया में नौकरशाहों को प्रवेश नहीं देता था। उन्होंने वह छीन लिया और कुछ ही घंटों में इन दो आदमियों ने इसे लालफीताशाही की पहुंच से बहुत दूर पहुंचा दिया। महीनों की देरी और कठिन तर्क, संताप और भ्रष्टाचार जिसे भारत ने कई दशकों से बनाया

था। वे दीवानों की तरह काम करने लगे और सात बजे उन्होंने नाटकीय ढंग से उदारवादी व्यापार नीति की घोषणा की। मनमोहन सिंह ने जब इन प्रस्तावों को देखा तो वह बहुत खुश हुए। उन्होंने विश्व को संकेत दिया कि भारत अब समझदारी से विकास पथ पर अग्रसर हुआ है वह भी निश्चित बाजार विनिमय दर के साथ।

नहाकर, बाहर नरसिंह राव लुंगी में ताजा दिख रहे थे। चिदंबरम ने प्रधानमंत्री के पास बैठकर उन्हें संक्षिप्त में सब कुछ बताया। प्रधानमंत्री मनमोहन की ओर मुड़े। उन्होंने पूछा, "क्या आप इससे सहमत हैं?" मनमोहन सिंह ने भी मंजूरी में सिर हिला दिया, "ऐसे में इस पर दस्तख्त कर देने चाहिए।" मनमोहन सिंह ने ऐसा ही किया और फिर प्रधानमंत्री ने भी पेपर के नीचे अपने दस्तखत कर दिए। इस तरह भारत के इतिहास में व्यापक संरचनात्मक सुधारों की एक नई शुरुआत हुई। प्रस्तावों में विर्निदिष्ट कुछ बातें उनके सिर के ऊपर से गुजर गईं, लेकिन नरसिंह राव उसमें दुबारा सुगठित करने के लिए दिए गए निर्देशों से संतुष्ट थे। उन्हें अपने तीनों आदमियों पर विश्वास था। जोकि सरकार के निर्णय लेने की धीमी व टेढ़ी-मेढ़ी प्रक्रिया को समझते थे, उनके लिए यह एक क्रांतिकारी मौका था। वादे और साहस के साथ उन चारों लोगों ने वह पा लिया जो बारह घंटे पहले असंभव दिख रहा था।

आने वाले वर्ष में चिदंबरम साख के लिए पावति पत्रों के उन्मूलन के लिए सहमत हो गए तथा और भी बेहतर व्यवस्था के लिए दोहरी विनिमय दर जो लालफीते को और आगे से काट देगी तथा नौकरशाही को प्रक्रिया से बाहर कर देगी, उस उपकरण की बलि देना जिससे उनकी पहचान बनी और जिसे उन्होंने जन्म दिया हो, बहुत ही साहसपूर्ण कार्य था। देश बुद्धिमानी से वृद्धि करता रहा और आने वाले

वर्षों में वित्त मंत्रालय ने एकीकृत विनिमय दर का परिचय कराया। एक और भी बेहतर क्रियाविधि जो भारत को व्यापार खाते पर करेंसी विनिमय तक ले गई। ए.एन. वर्मा और दूसरों ने मनमोहन सिंह को सुझाव दिया कि इतनी दूर जाने के बाद बाकी रास्ता भी तय कर लो और रुपये को परिवर्तनीय बना दो, परंतु वह बहुत ही सावधान थे और पूरी दूरी तय करने के लिए अनिच्छुक। पूंजी खाते पर रुपया अभी स्वतंत्र नहीं था। बहुतों ने बहस भी की कि उसकी संरक्षण नीति भारत के लिए वरदान थी, जैसा कि इसने भारत को 'एशियाई फ्लू' की पकड़ में आने से बचा लिया। 1991 चिदंबरम की बहुत बड़ी असफलता थी, सी.सी.आई.ई. के शक्तिशाली विभागों को बंद न कर पाने की अयोग्यता और विश्व व्यापार का महानिदेशालय, जोकि लगातार अनिष्ट किए जा रहा था और हमारे निर्यात के लिए बहुत बड़ा अडंग़ा था।

राव अब उद्योगों में से लाइसेंस राज को खत्म करना चाहते थे। उन्होंने राजीव गांधी द्वारा 1980 में किए गए आधुनिक सुधारों के प्रयास को देखा था। इन अल्प प्रयासों से बहुत अच्छे नतीजे सामने आए थे। विश्व में क्या घट रहा है, यह देखने के लिए वह विदेश यात्रा पर भी गए। कम्युनिज़्म के ह्रास ने राज्य की योजनाओं और नियंत्रणों के पांव के नीचे से गलीचा खींच लिया था। इसलिए उन्होंने जानबूझ कर उद्योग विभाग के अधिकार अपने पास सुरक्षित रखने का निर्णय लिया। उन्होंने ए.एन. वर्मा को इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए अपना मुख्य सचिव चुना। वह जानते थे कि वी.पी. सिंह के शासनकाल में वर्मा को बड़ी संख्या में कंपनियों के लाइसेंस रद्द करने में महारत हासिल थी। राव ने वर्मा से कहा कि वह पुराने प्रस्तावों की तह में जाकर उनका निरीक्षण करे। वर्मा इससे खुश था कि उसने जो

सुधारों का एक पैकेज राकेश मोहन के साथ मिलकर तैयार किया था, उसके लिए एक उम्मीद की किरण दिख पड़ी।

जब राव ने वर्मा-मोहन के प्रस्तावों को देखा तो वह समझ गए कि ये लंबी रेस के घोड़े नहीं हैं। वह फिर मनमोहन की मदद के लिए उनकी ओर उन्मुख हुए। मनमोहन सिंह अधिक से अधिक को लाइसेंस मुक्त करने के लिए राजी हो गए तथा व्यापार पर रद्दी एम.आर.टी.पी. के प्रतिबंधों को हटाने के लिए भी वे तैयार थे और विदेशी निवेशकों का भारतीय बाजार में हिस्सा बढ़ाने पर भी विचार कर रहे थे। प्रधानमंत्री कार्यालय व अन्य अधिकारियों के एक छोटे समूह (वर्मा, सुरेश माथुर, जयराम रमेश और राकेश मोहन) के साथ नई नीति को अंतिम स्वरूप देने के लिए कई दिन बिताए। वित्त मंत्रालय के अधिकारियों की ओर से इस नीति के विरोध में कई आवाजें उठीं लेकिन मनमोहन सिंह ने उन सबको दबा दिया। उद्योग राज्य मंत्री रंगा कुमारमंगलम जोकि सुधारकों में से नहीं थे और मनमोहन की लॉबी उन्हें अपनी नाव सवार करना चाहती थी। प्रधानमंत्री मूलत: कैबिनेट में उदारवादी औद्योगिक नीति लेकर गए।

आम तौर पर भारत में कैबिनेट की बैठकें शांत और गुपचुप होती हैं और इस पर शायद ही खुलकर बहस होती है। यह गोपनीय भी होती है। इस तरह किसी अन्य कलाकार से बात करना बहुत मुश्किल होता है। जब राव उद्योग मंत्री थे, तब उन्होंने नई औद्योगिक नीति प्रस्तुत की थी और जिसके संबंध में उन्हें कोई शिकायत भी नहीं मिली थी। इसे सहमति के तौर पर लेते हुए उन्होंने बुलंद आवाज में पूछा, "अगर हम सब कुछ स्वतंत्र कर दें और वह भी पूरी तरह से। क्यों न हम कार और उसकी जैसी अन्य चीजों को लाइसेंस मुक्त कर दें?" मनमोहन सिंह ने सहमति जताते हुए कहा, "इस तरह, आओ, हम सभी चीजों को,

सिर्फ छोटे नकारात्मक सुरक्षा सूची व पर्यावरण संबंधी चीजों को छोड़कर, खुली बाजार नीति के तहत ले आते हैं।" वर्मा और जो अन्य अधिकारी वहां बैठे हुए थे, उन्हें इन बातों को सुनकर अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। कुछ क्षणों में इस खेल में नरसिंह राव और मनमोहन सिंह ने लाइसेंस राज को धराशायी कर दिया।

तभी प्रधानमंत्री दुबारा सजग हुए। उन्होंने कांग्रेस के वरिष्ठ व पुराने सहयोगियों के चेहरों पर निराशा देखी। वे न तो राव को सहयोग ही दे रहे थे और न ही विरोध कर रहे थे। उन्होंने एक अपारखी जीवन का नेतृत्व किया था वह पुरानी नीतियों के बारे में नहीं सोच रहे थे उन्होंने सिर्फ नई नीतियों को पार्टी की नीतियों के तौर पर लिया। राव ने सबके चेहरे पर फैली उदासी को पढ़ लिया। उन्होंने पूछा कि एकजुट होकर चिदंबरम और मनमोहन सिंह की इन नीतियों के ड्राफ्ट की समीक्षा कर लीजिए। इस बैठक में सबकी सही भावनाएं उभरकर सामने आईं और इसमें कई विचार भी उठे। अर्जुन सिंह ने कहा कि वह पुरानी नीतियों में कोई निरंतरता नहीं पाते। फोतेदार का सोचना था कि यह नीति नेहरू और भारत विरोधी हैं? शंकरानंद ने सहकारिता को इसमें नहीं पाया। हालांकि चिदंबरम और मनमोहन सिंह ने सुधारों को अपनी बुद्धिमानी का परिचय देते हुए बचा लिया था फिर भी यह साफ हो गया था कि नीति अभी खटाई में हैं।

जब राव को इस बारे में पता चला तो उन्होंने चिदंबरम से कहा कि नीति की भाषा को राजनीति के अनुसार जायकेदार बनाकर पेश करो। उन्हें दिखाओ कि यह नीतियां बीते समय के साथ निरंतरता रख सकती हैं। चिदंबरम ने शीघ्र ही उसमें नेहरू, इंदिरा गांधी और राजीव गांधी के सुधारों से संबंधित वाक्यांश जोड़ दिए। तब कहीं जाकर नीतियों की रक्षा की जा सकी, फिर भी ये चुपचाप व पक्ष समर्थक ढंग से गुंजायमान हुईं। यह कहा जाता है कि हमने ये नीतियां क्यों बदली व इन नई

नीतियों की क्या आवश्यकता थी। इसके स्थान पर यह कहा गया कि ये नई नीतियां नेहरू के समाजवाद के सपने का ही अगला रूप हैं। इस धारणा ने राव के निश्चयों को हिलाकर रख दिया। उसे महसूस हुआ कि ये सब कहीं उसके लिए अपनी पार्टी विरोधी साबित न हो। उसे और भी सावधान रहने की जरूरत थी। यद्यपि मनमोहन सिंह जुलाई के मध्य तक नई औद्योगिक नीति की घोषणा करना चाहते थे जिसे बजट के साथ जोड़ना घातक सिद्ध हो सकता था, उसे कांग्रेस के विरोध का सामना करने के कारण और देरी हुई। अंततः इसकी घोषणा 24 जुलाई की सुबह ही कर दी गई थी। शाम को मनमोहन सिंह ने बजट पेश किया।

अगले दिन के अखबार में नई औद्योगिक नीति ने सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। सरकार में इस नीति के प्रति किसी का भी रवैया सकारात्मक नहीं था। अगले कुछ दिनों तक मीडिया और लोगों की स्थिति विस्फोटक थी। कुछ विरोध वाम की ओर से भी किया गया। वर्नाकुलर प्रेस और बिहार, मध्य प्रदेश और उड़ीसा के कुछ पिछड़े इलाकों से इसका विरोध हुआ। नरसिंह राव ने महसूस किया कि लोग और राजनीतिज्ञ वास्तव में सुधार चाहते थे। बजट में फर्टिलाइजरों की कीमत बढ़ाने का भी विपक्ष और कांग्रेस में किसान लॉबी के कुछ लोगों ने विरोध किया।

मनमोहन सिंह ने निश्चय किया कि पूंजी का उपयोग शीघ्रता से किया जाए। उन्होंने आर्थिक नीतियों से संबंध रखने वाले कैबिनेट सचिव नरेश चंद्रा और प्रधानमंत्री के सचिव वर्मा सहित कई महत्वपूर्ण सचिवों की बैठक बुलाई। बैठक में सिंह ने उन्हें आर्थिक संकट और बदलाव की जरूरत के लिए बताया। उन्होंने दोबारा उन्हें अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के वायदे की याद दिलायी और उन्होंने हमें बताया कि हमें अभी और क्या करना है और कितनी तेजी से करना है। वह बोले

कि प्रधानमंत्री सबके सुझावों की कद्र करते हैं लेकिन वह यह बर्दाश्त नहीं करेंगे कि उनकी राह में कोई रोड़े अटकाए। यह समय सबको बताने का था। किसी को भी दंडित नहीं किया गया और सब अपने नए काम में सही ढंग से जुट गए। यह एक साधारण बैठक थी। अधिकतर सचिवों का रवैया सकारात्मक रहा। यह सुधारों की दिशा में एक बिना किसी रुकावट के बढ़ने का निर्देश था।

मोंटेक सिंह ने कहा, "लोगों पर इसका गलत प्रभाव पड़ रहा है। उच्चस्तरीय नौकरशाही अनुशासित हैं और यह हमारे रास्ते में बाधक नहीं हैं।" बैठक में वित्त सचिव एस.पी. शुक्ला के विभाग का रास्ता दिखाया। तब राव ने वर्मा के नेतृत्व में एक संचालन समिति का गठन किया। जिसके सदस्य प्रत्येक बृहस्पतिवार की सुबह मिलते थे। कमेटी सुधारों को अगले दो वर्षों में अभूतपूर्व गति से आगे ले जाने के लिए एक निर्णायक उपकरण बनी। वर्मा ने समिति का संचालन दृढ़तापूर्वक किया। बृहस्पतिवार के दिन किसी को भी कहीं बाहर जाने की इजाजत नहीं थी। समिति की बैठक दो घंटे चलती थी जिसमें संबंधित सचिव एक या कभी-कभी दो सुधार प्रस्तुत करता था। वे मुद्दों पर खुलकर चर्चा करते। वर्मा संक्षिप्त रूप से सुधारों के प्रस्ताव पर विचार करते फिर उसे कैबिनेट के पास स्वीकृति के लिए भेज देते, और वहां से संसद। मैं जब उन दिनों को याद करता हूं तो मुझे ध्यान आता है कि सरकार उन दिनों हर हफ्ते कोई-न-कोई नया सुधार प्रस्ताव हमेशा लाती थी।

अक्तूबर में, मनमोहन ने चिदंबरम से मोंटेक सिंह की वित्त मंत्रालय में आर्थिक मामलों में सचिव के रूप में मांग की। चिदंबरम अपने सबसे काबिल सुधारकों में से एक को कैसे जाने की इजाजत दे सकते थे? चिदंबरम ने कहा कि ऐसा करने से तो वाणिज्य विभाग के सारे काम जहां हैं, वहीं अटके रह जाएंगे। वह सभी

मामलों में शीर्ष पर रहे हैं और यहां बात एक सुधारक अर्थशास्त्री की नहीं बल्कि एक काबिल प्रशासक की थी जो बहुत ही धैर्य व समझदारी से सारे कार्यों को क्रियान्वित कर देते हैं। मोंटेक क्रियान्वित करने वालों में से नहीं थे। मनमोहन सिंह नए व्यक्ति को चाहते थे। वह अशोक देसाई जैसा उदारवादी अर्थशास्त्री चाहते थे।

देसाई ने बताया कि संघ लोक सेवा आयोग से उसे बुलावा आने पर उसने 24 जुलाई को अपना बायोडाटा भेज दिया। उसे साक्षात्कार के लिए सुबह साढ़े नौ का समय दिया गया लेकिन अन्य उम्मीदवारों के साक्षात्कारों के चलते उसका नंबर डेढ़ बजे आया। अंदर जाने पर उससे एक ही प्रश्न पूछा गया कि क्या उसे सरकार में काम करने का कोई अनुभव है? अर्थशास्त्र संबंधी किसी भी विषय पर उससे चर्चा नहीं की गई और साक्षात्कार खत्म हो गया। देसाई ने महसूस किया कि उसके साथ तंत्र ने मजाक किया है। जो उसे वित्त मंत्रालय में अर्थशास्त्री के रूप काम करने का मौका नहीं देंगे। मोंटेक के वित्त मंत्रालय में आने पर उन्होंने जल्द ही अशोक देसाई के लिए निजी विभाग से एक पैकेज की व्यवस्था कैबिनेट की सब कमेटी से कराई और उन्हें प्रधान सलाहकार के रूप में ले आए। दीपक नैयर कुछ समय से मनमोहन सिंह के सुधारों से नाखुश थे और इसी सबके चलते उन्होंने मुख्य आर्थिक सलाहकार के पद से इस्तीफा दे दिया। इस प्रकार दिसंबर 1991 में अशोक देसाई का बोर्ड में पदार्पण हुआ, जब बजट की तैयारियां पूरे जोरों पर थी। वह महत्वाकांक्षी और सुधारों के प्रति तार्किक थे।

अगले दो वर्षों में सुधारकों ने अपने खाते में और भी कई उपलब्धियां जोड़ लीं। केंद्रीय सरकार वितीय घाटा जोकि सकल घरेलू उत्पाद का 1991 में 8.4 प्रतिशत था। 1992-93 के बीच में घटकर 5.7 प्रतिशत हो गया। विदेशी मुद्रा भंडार 1991

की जुलाई में एक सौ करोड़ डॉलर से बढ़कर दो हजार करोड़ डॉलर हो गया था। मुद्रा स्फीति की दर 1993 की जुलाई के मध्य में 13 प्रतिशत से घटकर 6 प्रतिशत रह गई थी। सुधारकों ने क्रियात्मक ढंग से औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली को समाप्त कर दिया। उन्होंने बहुत बड़ी संख्या में औद्योगिक संस्थानों एम.आर.टी.पी. के नियंत्रण से मुक्त कर दिया, जिसने इनके विस्तार और निवेश पर रोक लगा रखी थी। उन्होंने कठोरता से बैंक, एअरलाइंस, विद्युत शक्ति, पेट्रोलियम और मोबाइल टेलीफोन सहित कई अन्य व्यवसायों पर से सार्वजनिक क्षेत्रों का एकाधिकार समाप्त कर उन्हें निजी क्षेत्रों के लिए खोल दिया। उन्होंने देश को विदेशी निवेश के लिए खोल दिया और 34 उद्योगों में 'स्वचालित प्रवेश' की भी इजाजत दे दी। उन्होंने विदेशी निवेश प्रोत्साहन बोर्ड की स्थापना भी की, जिसने ए. एन. वर्मा की अध्यक्षता में बड़ी तेजी से अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। विदेशी निवेश हर साल दोगुना होता गया और ये पंद्रह करोड़ डॉलर बढ़ना शुरू हुआ था जोकि 1997 तक पहुंचते-पहुंचते 300 करोड़ डॉलर तक पहुंच गया (यह और ऊपर तक जाता अगर हम विद्युत और टेलीकॉम के क्षेत्रों में नियंत्रण ठीक से करते)।

उन्होंने जटिल आयात नियंत्रण शासन पद्धति को ढहा दिया। कच्चा माल, घटक, पूंजीगत माल अब वस्तुतः प्रतिबंधों से मुक्त होकर अंदर दाखिल हो सकते थे। सीमा शुल्क नीचे आ गया। 1991 के दो सौ प्रतिशत की चोटी से 1990 के मध्य में 40 प्रतिशत द्वारा औसत शुल्क में 25 प्रतिशत कमी आई। रुपया समान अवधि में प्रतिकात्मक स्थिर अधिमूल्यांकन दर से एकीकृत विक्रय निर्धारित स्थायी दर और चालू खाता विनिमय में चला गया। "ऐसा पाया गया कि आयात-निर्यात पर्चियां लालफीते को भी शामिल करती थीं और नकली बनाने में भी आसान थीं, चाहे जो कुछ भी हो, जब हम अस्थायी विनिमय दर पर गए तो वह अनावश्यक

बन गई।" 1991 में कर की दरें 56 से 40 प्रतिशत पर आ गई (और चिदंबरम ने 1997 के बजट में 30 प्रतिशत और आगे)। उन्होंने मूल्य के अनुसार शुल्क को स्थानांतरित कर उत्पाद शुल्क के विशाल तंत्र को और भी सरल बना दिया। वित्तीय कार्यक्षेत्र में उन्होंने बैंकों की उच्च आरक्षित आवश्यकताओं को कम कर दिया (जिनका उद्देश्य सरकार को सस्ती निधि देना था।) और सरकारी प्रतिभूतियों पर ब्याज दरों को बाजार द्वारा निर्धारित करने के लिए छोड़ दिया। उन्होंने रिजर्व बैंक के साथ सरकारी ऋणयन पर टोपी पहना दी। (जब पूर्व निर्धारित उच्चतम सीमा का उल्लंघन किया गया तब इसने आरबीआई को विपणन दर से कोष विधेयक को मंजूरी देने की अनुमति दे दी)। उन्होंने पूंजी बाजार अंतरराष्ट्रीय निवेशकों के लिए खोल दिए, जिनका निवेश दशक के अंत तक ग्यारह करोड़ डॉलर तक पहुंच गया। उसी समय उन्होंने भारतीय कंपनियों को विदेश में भूमंडलीय निक्षेपागार रसीदों द्वारा उधार लेने की अनुमति दे दी। उन्होंने शेयर बाजारों में परदे पर आधारित व्यापार का परिचय कराया और शेयरों को अवास्तविक बना दिया।

यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। किंतु पहले दो वर्षों के बाद सरकार ने सुधारों पर रोक लगा दी और बहुत कुछ बिना किए ही रह गया। सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्रों के निजीकरण का कार्य शुरू नहीं किया था, जोकि अर्थव्यवस्था को चूस रहा था। उसने अभी तक मजदूरों के लिए किसी प्रकार के सुधारों को लागू नहीं किया था- अगर किसी प्रकार का उत्पादन नहीं हो रहा है तो भी यह संभव नहीं है कि किसी एक मजदूर को भी छोड़ दिया जाए। किसी कंपनी के दिवालिया हो जाने पर भी उसे बंद करना असंभव है। इसने अभी तक कृषि बीमा शुरू नहीं किया था। वह सब्सिडी जोकि भारत की वित्तीय स्थिति को धीरे-धीरे खोखला करती जा रही थी और प्राथमिक रूप से उत्तरदायी थी, अवांछनीय उच्च वित्तीय वर्ग से निपटने के

लिए भी इसने कोई प्रयास नहीं किया था। इसने लाइसेंस राज को मिटा दिया था। किंतु इसने इंस्पेक्टर राज से निपटने के लिए कुछ नहीं किया था, इंस्पेक्टरों की उस फौज के लिए जिन्होंने भारतीय उद्यमियों का जीवन नरक बना रखा था। यह सच है कि अधिकतर इंस्पेक्टर राज्य सरकार में थे, आम सहमति के अनुसार जो सबसे बुरे थे, वे कस्टम और उत्पादन (आबकारी) विभाग में थे इसने भारत की चरमराने वाली आधारित संरचना की समस्या का समाधान भी नहीं किया। शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे बड़े क्षेत्रों में भी इसने कोई सुधार करने शुरू नहीं किए थे। 1991 के सुनहरे ग्रीष्म के नौ सालों बाद भी सुधार आधे-अधूरे हैं।

पिछले कुछ साल भारत के सुधारवादी मस्तिष्कों के लिए काफी निराशापूर्ण रहे। गलती से हम यह सोच रहे थे कि हम 'शेर' बन गए हैं। किंतु 1994 के बाद हम बहुत ही कष्टदायी धीमी गति से आगे बढ़े हैं और मैंने इस तथ्य को स्वीकारा है कि भारत वह 'हाथी' है जो दो कदम आगे बढ़ता है तो एक कदम पीछे भी हटता है। यह भारतीय लोकतंत्र की रफ्तार है। व्यापार में मंदी के बावजूद यह विडंबनापूर्ण था कि नब्बे के दशक में भारत की अर्थव्यवस्था शेर की तरह साढ़े छह की दर से बहुत तेजी से बढ़ी। सबसे बड़ी चूक यह हुई कि किसी ने भी लोगों के लिए सुधार नहीं किए। आशा के अनुरूप उम्मीदों में बढ़ोतरी हुई और अमीर और अमीर हुए जिसने गरीबों को चोट पंचाई। भविष्य के प्रति पवित्र दृष्टिकोण भी यहां साफ नहीं है। सर्वसम्मति से यहां कई रुकावटें हैं जिनमें से कई लोकतंत्र की उपज है। मजदूर यूनियनें सार्वजनिक क्षेत्रों के नवीनीकरण से बचना चाहती थीं। शक्तिशाली फार्म लॉबी सब्सिडी को हटाना चाहती थी और वाम प्रत्येक चीज को रोकना चाहते थे। फिर भी अन्य कई प्रजातंत्र इन नीतियों को लेकर सफल रहे हैं। भारत ही क्यों असफल हुआ? 1991 का ग्रीष्म हमें क्या सबक सिखाता है जबकि

सब कुछ सही ढंग से चल रहा था। सुधारों को मिलने वाली ऊर्जा एकदम से कहां चली गई? दो वर्षों के बाद अचानक ही सुधारों को क्यों रोक दिया गया।

जवाब को खोजने के लिए मैंने निर्णय लिया कि मैं इस नाटक के प्रमुख पात्रों- नरसिंह राव, मनमोहन सिंह, पी. चिदंबरम, मोंटेक सिंह, ए.एन. वर्मा, अशोक देसाई, राकेश मोहन और दीपक नैयर से मिलूं। यह मुश्किल नहीं था क्योंकि मैं इन सबको जानता था, सिर्फ भूतपूर्व प्रधानमंत्री को छोड़कर। ये सभी बहुत ही खुले मिजाज के थे। लेकिन सभी असाधारण कमजोर स्मरण शक्ति के शिकार थे। मैंने एक चीज अजीब पाई कि इनमें से किसी ने भी अपने ऐतिहासिक कदमों को किसी डायरी में नहीं उतारा था। किंतु इस प्रकार की असफलताएं तो भारतीयों के लिए आम हैं क्योंकि हमारे सारे के सारे ऐतिहासिक तथ्य लंबे समय से ही विदेशियों ने ही हमें उपलब्ध कराए हैं। काफी समय डटे रहने के बाद ए.एन. वर्मा मेरी मुलाकात राव से निर्धारित करा पाए, लेकिन कुछ शर्तों पर। पहले वह चाहते थे कि मेरे सभी प्रश्न लिखित में हों। दूसरी वह मुझे आंकने के लिए पहले मुझसे एक प्रारंभिक मुलाकात करेंगे तब वह मेरे प्रश्नों का उत्तर लिखित रूप में देंगे। अंततः उन्होंने वर्मा से मुझसे मिलने के लिए कहा। जब हम मिले, उनका रवैया चौकस और रक्षात्मक था। वह एक भगोड़े आदमी की तरह दिखाई दे रहे थे। मैं उनमें वह सुधारक नहीं ढूंढ पाया जिसने विश्व के छठवें भाग के लोगों का भाग्य बदल दिया था।

जब हम बैठ गए तब भूतपूर्व प्रधानमंत्री माने कि वह एक कांग्रेसी थे, क्रांतिकारी नहीं। "कांग्रेस हमेशा किसी-न-किसी की कड़ी है। मैंने भी सिर्फ इसी परंपरा को आगे बढ़ाया और भूत को बदलने का प्रयास नहीं किया।" वह बोले कि उनका मुख्य मुद्दा गरीबी था। किंतु उन्हें महसूस हुआ कि विकास की जरूरत के लिए इसे

पीछे छोड़ना पड़ेगा। उनके सुधारों की रूपरेखा विकास दर को बढ़ाने के अनुरूप थी। यद्यपि विकास दर अपने आप में पर्याप्त नहीं थी। हमें गरीबी पर सीधा हमला करने के लिए रोजगार योजनाओं की आवश्यकता थी, और राव की सरकार ने अन्य सरकारों की अपेक्षा इस दिशा में अधिक कार्य किया। नेहरू मिश्रित अर्थव्यवस्था के विचार में अटूट विश्वास होने के कारण वह सार्वजनिक क्षेत्रों के निजीकरण के विरोध में थे। उन्होंने कहा, "आप उस बच्चे का गला कभी नहीं दबा सकते जिसे आपने जन्म दिया है।" उन्होंने सार्वजनिक क्षेत्रों की स्थिति को सुधारने के लिए उन्हें निजी क्षेत्रों के साथ प्रतिस्पर्धात्मक दौड़ में ला खड़ा किया। हम इस बात से सहमत नहीं थे कि दो वर्षों बाद सुधार रुक गए थे"-भारत सही गति में सुधारों के साथ चल रहा था और तेज गति से सभी मुश्किलों से निबट रहा था।" जब वह बात कर रहे थे, "मुझे लगा कि वह अपनी नीतियों के बचाव करने में अधिक रुचि दिखा रहे थे।"

सभी पात्रों से बात करने के बाद मैंने महसूस किया कि 1991-93 के सुधारों के प्रमुख पात्र वह सूत्रधार नरसिंह राव ही रहे हैं। यद्यपि कर्णधार मनमोहन सिंह सारे श्रेय ले गए लेकिन यह राव ही थे जिन्होंने कठिन रास्ता चुना और प्रभावशाली निर्णय लिए उन्हें ऊर्जा और राजनीतिक सहयोग दिया। वह चतुर थे और जानते थे कि मुश्किलों से कैसे निपटा जा सकता है। जिस ढंग से उन्होंने औद्योगिक नीति की समीक्षा की और पुराने मंत्रियों को उनकी भावनाएं व्यक्त करने का मौका दिया। यह उनकी काबिलियत का एक उदाहरण है। इसी के साथ-साथ मैं इसमें भी विश्वास करता हूं कि मनमोहन सिंह के बिना सुधार संभव नहीं थे। इसका विस्तार यह है कि जिस रास्ते जाना था, उसका नक्शा मनमोहन सिंह ने ही बनाया। उन्होंने एक सुंदर चाल के अंतर्गत कई कमेटियों का गठन किया, जैसे- बैंक सुधारों

के लिए नरसिंहन, कर सुधार के चेलैया, बीमा सुधारों के लिए मल्होत्रा और बुद्धिमानी भरे तर्क दिए, इन क्षेत्रों में किए गए सुधारों को आंकने के लिए। इसके लिए जरूरी था कि मनमोहन सिंह आगे आएं और विकास के बारे में लोगों को एक नई दिशा दिखाएं। मनमोहन सिंह एक शांत और प्रकृति से सावधान रहने वाले व्यक्ति थे। बिना राव के सहारे के अपने दम पर वह यह सब नहीं कर सकते थे। नई व्यापार नीति जिस तेज गति से आई थी वह भी चिदंबरम के सहयोग के बिना संभव नहीं थी। वर्मा निर्वाचन कमेटी का अध्यक्ष होने से डरा हुआ था। और उसने ही दो सालों में सुधारों के क्रियान्वयन को गति दी थी। वह तंत्र को अच्छी तरह समझता था और सुधारों के पक्ष में उसे मोड़ना आता था। वर्मा का महत्वपूर्ण योगदान न तो समझा गया और न ही सराहा गया। अंत में तीनों- मनमोहन सिंह, चिदंबरम और वर्मा से ही राव की ताकत का अनुमान लगा सकते हैं।

आर्थिक सुधार इसलिए किए गए क्योंकि उस समय संकट था। इसके अलावा और कोई चारा नहीं था। अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक का दवाब भी स्पष्ट था। जब संकट दूर हो गए और दबाव हट गया और तभी सुधार भी रोक दिए गए। तब भारत नीति-निधारकों का सच भी सामने उभर कर आया। कुछ असंभवों को छोड़कर राजनीतिक वर्ग में कोई भी नौकरशाह, राजनीतिज्ञ ऐसा नहीं है कि जो सुधारों के प्रति उत्साही हो। किसी के निजी व्यक्तित्व में तो कोई बदलाव लाया नहीं जा सकता। एक अशोक देसाई, जोकि बहुत योग्य थे लेकिन प्रभावी नहीं, वह टीम के खिलाड़ी नहीं थे और दो साल बाद छोड़कर चले गए। लोगों में बदलाव लाए बिना बीते हुए समय के योजना बनाने वाले भविष्य के उद्धारक बन गए थे। प्रधानमंत्री में भी फालूत मंत्रालयों बंद करने का साहस नहीं था। हमारी बीमारी को पकड़ने वाला कोई भी व्यक्ति नहीं था। राष्ट्र को जो पुनर्निर्माण की सख्त जरूरत

थी, उसका आंतरिकरण नहीं किया था। इसीलिए नीति-निर्धारक चतुराई व योजनाबद्ध तरीके से उदारीकरण के अन्याय के विरुद्ध सुधारों के बाद उठने वाली शिकायतों से अपनी रक्षा नहीं कर सके। उन्होंने लोगों के समक्ष यह स्वीकार नहीं किया था कि नेहरू इंदिरा का पथ असफल हो चुका है।

नए लोगों की कमी का मतलब है पुराने, जोकि शासन के तहत अपने निजी स्वार्थों के चलते काफी फला-फूला था, जिसने कभी भी भी उनकी असफलता के लिए अपनी जिम्मेदारी को स्वीकारा नहीं था, जो अभी तक अपने महत्वपूर्ण स्थानों पर बने हुए थे और अपनी वर्तमान स्थिति में सुधार आने के इंतजार में थे। हारे और जीते हुओं के परिणामों की पुन:संरचना में भारत के हारे हुओं को ब्याज देना है जो प्राचीन शासन प्रणाली से लाभान्वित हैं। व्यापार केंद्र को अभी उच्च शुल्क दरों की दीवार फांदना और मुकाबला करना है। किसान भी बिजली, पानी और फर्टिलाइजरों पर सब्सिडी खो चुके हैं; बैंक आसान एकाधिकार खो चुके हैं; सार्वजनिक क्षेत्रों के कर्मचारियों की नौकरियां असुरक्षित हो गई हैं जो उन्हें ऊर्जा और स्फूर्ति प्रदान करती थीं। पुराने हितों ने बहस करना जारी रखा कि उदारीकरण असमान परिणामों का नेतृत्व करेगा, किंतु इसकी सहायता से बहुत ही कम परिणाम सामने आए।

राव एक अनिच्छुक उद्धारक थे। वे डेंग नहीं थे, थैचर भी नहीं थे, न ही सैलीनाम, महाथीर, मेनम, कीटिंग, रॉलिंस और वैक्लेव हैवेल भी नहीं थे ये सब-के-सब जिस रास्ते पर चले, उन्होंने मतदाताओं को उनकी ही भाषा में वह सब समझया जो

उन्होंने किया। राव ऐसा करने में असफल रहे क्योंकि उनमें गहरे आत्मविश्वास की कमी थी। उन्होंने बात की, आम आदमी के चेहरे के साथ सुधार की। सुधारक को हमेशा एक बात याद रखनी चाहिए कि सुधार गरीब की एकमात्र उम्मीद होते हैं। इस तरह कोई भी राजनीतिक प्लेटफार्म इसको आंक नहीं सकता। लोग बीच में कोई सुधार अपने पक्ष में नहीं कर सके। आदर्श रूप में राजीव गांधी, जिन्हें संसद में बहुमत हासिल था, यह कर सकते थे। लेकिन उन्होंने मौका खो दिया और हमने अपने छह्ह वर्ष। कई तरह से, राव का काम डेंग की अपेक्षा अधिक मुश्किल था। जिसने अपनी बाजार क्रांति सजातीय, स्वेच्छाचारी समाज में हासिल की थी। राव ने अपनी उपलब्धि विषम जातीय बंधनों व उथल-पुथल प्रजातंत्र के अंदर हासिल की। उनकी सबसे बड़ी असफलता थी कि वह सुधारों को लागू तो कर सके लेकिन पार्टी में अपनी छवि सुदृढ़ न कर सके और अंततः उनकी पार्टी ने ही उन्हें डुबो दिया। राव के शासन काल की सबसे सुखद धारणा यह रही कि बहुदलीय सरकार होने के बावजूद भी कोई उन्हें सुधारों के उनके विचार से डिगा नहीं सका और वह उन्हें धीरे-धीरे लागू करते रहे।

मनमोहन के बारे में कई तकलीफदेह प्रश्न हैं। वह विश्व में उदारों के लिए मील का पत्थर बन चुके थे। वह अंतरराष्ट्रीय और व्यापार मंचों पर बखूबी बोलते थे और उन्होंने विश्व-व्यापार मंच पर भारत को एक अच्छे निवेश क्षेत्र के रूप में पहचान

दी थी। वह कई युवा भारतीयों के नायक बन गए थे जो यह सोचते थे कि भारत बदल रहा है और अब उसका भविष्य उज्ज्वल है। तब उन्होंने सुधार बंद कर दिए और सुधारों से अलंकृत भाषा भी बंद कर दी। वह अपनी पार्टी को अपनी नीतियों से संतुष्ट करने में असफल रहे। उन्होंने युवा कांग्रेसियों से मिलने का अवसर भी गंवा दिया तथा विदेशी निवेशकों को आकर्षित करने के संदेश का भी वे सही ढंग से प्रचार नहीं कर सके। अंततः राजनीति ने उन्हें धीमा कर दिया। हर्षद मेहता के शेयर बाजार घोटाले से उन पर एक गहरा आघात हुआ। संयुक्त संसदीय समिति की नजर उन पर पड़ गई। उन्हें दो बार इस्तीफे के लिए कहा गया लेकिन हर बार उनकी किश्ती को राव ही मंझदार से निकाल कर लाए।

कार्यालय छोड़ने के बाद मनमोहन सिंह की भाषा राजनीतिक और सचेत हो गई। वह भी सुधारों की बात को आम आदमी के चेहरे से जोड़ने लगे। क्या वह एक प्रतिबद्ध सुधारक थे जैसा कि विश्व उन्हें मानता था। वह तीस साल से उन नीतियों को बना व उनकी रक्षा कर रहे थे, जो उदारीकरण के खिलाफ थीं। वह पुरानी व बेकार नीतियों को बदलने में लगे हुए थे और पूर्वी एशिया के देशों से भारत की तुलना करते थे कि भारत उनसे कितना पिछड़ा हुआ है। क्या वह एक सच्चे प्रवर्तक थे। अगर थे तो प्रवर्तन के लिए 1994 से अब तक का उनका प्रदर्शन ठीक नहीं था। मैंने उसकी वैद्यवृत्ति को ऐसे नोट किया है, जैसे उन्हें स्वयं को विश्वास

दिलाने की आवश्यकता है कि अंततः सुधार गरीबों को फायदा पहुचाएंगे। मैं दुख के साथ निष्कर्ष पर पहुंचा कि वह एक सुधारक न होकर एक सत्यनिष्ठ व्यक्ति थे।

गरीबों की बात करने पर मैं यह स्वीकार करता हूं कि यह सुधारों पर बहस को धुंधला कर देता है। मेरा मानना है कि किसी भी समाज में पंद्रह प्रतिशत लोग उच्च वर्ग के होते हैं और पंद्रह प्रतिशत वे लोग होते हैं जिनकी देख-रेख राज्य करता है। सुधारों का मुख्य केंद्र इन दोनों के बीच के सत्तर प्रतिशत लोग होते हैं। लोगों की इसमें बड़ी तादद होती है, जिन्हें सफल आर्थिक सुधारों के माध्यम से मध्यवर्ग में तब्दील किया जा सकता है। सही परिस्थितियां, कठोर परिश्रम, स्व-सहायता और शिक्षा के माध्यम से मध्यवर्ग अपने को प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था द्वारा बदल सकता है। यह भारत में संभव नहीं है क्योंकि हमारी मौजूदा नीतियां विकास को दबा रही हैं। हमारा मध्यवर्ग 1984 में कुल जनसंख्या का केवल दस प्रतिशत था। अस्सी के दशक में जब अर्थव्यवस्था गंभीरता से विकास करने लगी और सुधार होने लगे, तब से मध्यवर्ग की संख्या कुल जनसंख्या की तिगुनी हो गई जो राष्ट्रीय अनुप्रयुक्त आर्थिक अनुसंधान परिषद के अनुसार बीस प्रतिशत के आसपास है। सुधार तभी सफल हो सकेंगे, जब भारत में मध्यवर्ग की संख्या में वृद्धि होगी। गरीबों को देखना भी आसान है क्योंकि वह कुल जनसंख्या के चालीस से पचास प्रतिशत न होकर केवल पंद्रह प्रतिशत ही हैं।

लंबे समय में सुधार गरीबों की मदद करेंगे। सुधार हमें विकास की ओर ले जाएंगे। जिसके साथ हमें अधिक नौकरियां, कम मुद्रा स्फीति, सस्ता सामान, रोजगार के अवसर और कृषि व अन्य सेवाओं में अनेकानेक अवसर हासिल होंगे। सुधारों का अर्थ है कि अमीर मध्यवर्गीय किसानों के लिए कम सब्सिडी और सार्वजनिक क्षेत्र का कम ह्रास। विकास और राजस्व ये दोनों ही गरीब कार्यक्रम के लिए प्रमुख संसाधन हैं। किसी भी तरीके से देखो तो गरीबों के लिए सबसे जरूरी और तत्काल लागू करने वाले सुधार हैं, प्राथमिक विद्यालय और प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र। यह संपन्नता की ओर जाने का एक आसान रास्ता है। दुर्भाग्यवश, ये सुधार नहीं हो सके। यद्यपि कई मौकों पर नरसिंह राव ने यह जाहिर किया कि वह साढ़े तीन प्रतिशत सकल घरेलू उत्पाद का छह प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करना चाहता है। यह आश्चर्य की बात है कि राजनीतिज्ञ जनता तक अपने सुधारों को पहुंचाने में अक्षम होते हैं और सभी गुप्त रूप से सुधार करना चाहते हैं। राजनीतिक वर्ग का कोई भी सदस्य यह नहीं जानता कि यहीं कुछ चीजें हैं जो उन्हें वोट दिलाने में सहायक सिद्ध होंगी। कांग्रेस के सदस्य अपनी तुच्छ गुंटबंदी से बाहर नहीं आ सके। भारतीय राजनीति में वाम और तीसरी ताकतें सुधारों के पक्ष में नहीं हैं क्योंकि ये आभिजात्य वर्ग व नौकरशाहों के समर्थक हैं। भाजपा जो सुधारों के पैकेज की असली हकदार अपने को मानती है, जिसका पहला मुद्दा धन है, गरीबी उसके लिए गौण विषय है।

जब पहला सुधार सामने आया तो भारत के लोगों की अपेक्षा कांग्रेस अधिक सकते में आ गई। आखिरकार यही वह पार्टी थी जिसने भारत को 'लाइसेंस राज', गरीबी हटाओ, बाजार विरोधी नीतियां और सार्वजनिक क्षेत्र को ऊंचाई प्रदान की थी। नरसिंह राव का ऐतिहासिक चरित्र यह रहा है कि उसने राष्ट्र के गुरुत्वकेंद्र को ही बदल डाला। तब से अब तक सभी पार्टियां बाजार क्षमता की कीमत समझने में लगी हुई हैं। इसके लिए सभी पार्टियों की आम सहमति की आवश्यकता थी रामू और वामू को छोड़कर। यह स्पष्ट करेगा कि क्यों सुधार अधूरे ही रह गए थे। यही नरसिंह राव और मनमोहन सिंह की महान संपत्ति है।

अगर वह आर्थिक सुधारों पर एकमत थे तो उन्होंने उन्हें लागू करने में हताशा भरी देर क्यों की? अगर हम इस पर सहमत हैं कि हमें क्या करना है तो वह हम क्यों नहीं कर लेते। इसका एक ही कारण है और वह यह कि हमारे राजनीतिक दलों के पास कोई भी आर्थिक एजेंडा नहीं है। दूसरा, हमारे अर्थशास्त्र मंत्रालय में कोई भी सुधारक नहीं है। तीसरा, हमारा बोलना व्यर्थ की बातों पर ही होता है। हम अपनी ऊर्जा 'क्या' जैसी बहसों पर नष्ट करते हैं, बनिस्बत इसके कि 'कैसे' को कार्यरूप दें। यह विषय निजी और सार्वजनिक का नहीं है। यह विषय है हम अधिक बिजली का उत्पादन कैसे करें, जब राज्य विद्युत बोर्ड का ग्राहक दिवालिया हो तब राजनीतिज्ञों को किसानों को मुफ्त में बिजली देनी चाहिए। सुधार करना एक बहुत ही मुश्किल

कार्य है और यह सुस्त दिमाग वालों के बस की बात नहीं है। ये दिमाग की संपूर्ण एकाग्रता चाहते हैं, ये समस्या के सुलझाव की योग्यता चाहते हैं और दिमागी तौर पर मजबूत व्यक्तियों की मांग होती है। अधिक तथ्यों पर संपूर्ण एकाग्रचित व उन्हें सुलझने की क्षमता चाहते हैं। यह कमरों में बैठकर बातचीत करने के विषय नहीं हैं। दुर्भायवश, हमारे राजनीतिज्ञ व पार्टियां प्राय: आर्थिक विषयों पर आकर नौसिखिये व दिमागी तौर पर सुस्त हो जाते हैं।